18

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ

मानव समाज सदैव से परिवर्तनशील रहा है। आप भी अपने जीवन में ही नहीं अपितु अपने आस-पास परिवारों में भी परिवर्तन का अनुभव करते रहे होंगे। आपके परिवार के कुछ लोग अपने पैतृक गाँव को छोड़कर शहरों में जा बसे होंगे। उसी तरह, उनमें से कुछ ने अपने खेती के व्यवसाय को बदलकर कारखानों और नौकरी के धंधे शुरू कर दिए होंगे। आपके पूर्वज-पितामह, माता-पिता, चाचा-चाची और चचेरे भाई-बहिन, पहले बड़े-बड़े सम्मिलित परिवारों में एक ही मकान में रहते होंगे। किंतु, अब वे उन बड़े-बड़े सम्मिलित परिवारों से अलग होकर छोटी-छोटी पारिवारिक इकाइयों में रह रहे होंगे। इसलिए आप अनुभव करते हैं कि ये परिवर्तन केवल व्यवसायों में ही नहीं किंतु पारिवारिक ढाँचे या संरचना में भी पाये जाते हैं।

अभी तक लोग, प्राय: पूरी तरह परंपरागत वेशभूषा पहनते दिखाई देते थे। परन्तु, अब सार्वभौमिक तरीके के कपड़ों का पहनावा एक आम बात हो गई है। वही बात इन वेशभूषाओं के निर्माण में काम आने वाली वस्तुओं में भी पाई जाती है। हम देखते हैं कि हमारे पूर्वजों के समय की तुलना में आज की सामाजिक संस्थाओं में भी भारी परिवर्तन आ गया है। उनके आधुनिक स्वरूप उनके पूर्वरूपों से काफी अलग हैं। हमारे आसपास जो भी घटित हो रहा है, उसमें से प्रत्येक घटक में हर क्षण कुछ न कुछ बदलाव आता रहा है जो तत्काल दिखाई नहीं देता है। यह उसी तरह है जैसे एक औद्योगिक फर्म में मालिक और नौकर के बदलते संबंधों में अंतर दिखाई देता है। अतएव, सामाजिक परिवर्तन, इसके कारणों और परिणामों का ज्ञान आजकल समाज के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। इस पाठ में हमारा मतलब सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं से है।

उद्देश्य:

इस पाठ को पढने के बाद आप;

- सामाजिक परिवर्तन का अर्थ जान सकेंगे;
- समाजिक परिवर्तन से संबद्ध पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कर सकेंगे;
- सामाजिक परिवर्तन के गुणों अथवा विशेषताओं को पहचान सकेंगे; और
- सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों और पद्धतियों की व्याख्या कर सकेंगे।

18.1 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ क्या है?

सामाजिक परिवर्तन शब्द; 'सामाजिक' और 'परिवर्तन' इन दो शब्दों से बना है। इनका अर्थ समझना बहुत जरूरी है। 'सामाजिक परिवर्तन' एक विशेष अवधि में एक व्यक्ति, सामाजिक समूह अथवा किसी पदार्थ जैसी किसी वस्तु में भिन्नता आ जाना है। 'सामाजिक' शब्द को दो तरह से परिभाषित किया जाता है। एक समाज और 'सामाजिक संरचना या ढाँचे' के रूप में और दूसरा 'संस्कृति' के रूप में। कुछ समाजविज्ञानी ऐसा मानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन का मतलब केवल उन बदलावों से है जो किन्हीं सामाजिक संगठनों में ढाँचागत और समाज के कार्यों में घटित होते हैं। समाजविज्ञानियों का दूसरा समूह इसे संस्कृति के उत्थान और पतन की दृष्टि से परिभाषित करता है। सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का एक युग्म (जोड़ा) है जिसमें विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन के जीवन मूल्य सम्मिलित होते हैं।

दूसरे शब्दों में सामाजिक परिवर्तन एक ऐसा शब्द है जो किन्हीं सामाजिक क्रमिक विधियों, प्रक्रियाओं और पारस्परिक अन्त: क्रियाओं संबंधी भिन्नताओं को वर्णित करने या दर्शाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसकी व्याख्या एक ऐसी पद्धति के रूप में भी की जा सकती है जो किन्हीं लोगों के जीवन और एक समाज की कार्यशैली में या तो सुधार करती हो अथवा पुराने स्वरूप को बदल देती हो। समाज प्रगतिशील प्रभावों के जगत में विचरण करता है या प्रगति चाहता है। उदाहरण के लिए, भौतिक पदार्थों और प्रौद्योगिकी के प्रसार का परिणाम सिद्धान्तों और जीवन-मूल्यों की पुनर्रचना के रूप में हुआ। बदले में, इससे संस्थागत ढाँचे या संरचना के परिवर्तन में आधुनिक सामाजिक शक्तियों का प्रभाव स्पष्ट है। भारत में सम्मिलित परिवार की प्रथा सामान्य रूप से सभी जगह व्याप्त थी। परिवार के मुखिया की अन्य सदस्यों के ऊपर हर बात चलती थी और वही उन्हें कार्य बाँटा करता था। अब वह उन एकल परिवारों के रूप में तेजी से बदलती जा रही है, जिनमें मुखिया के पारिवारिक बंधन और अधिकार धीरे-धीरे शिथिल होते जा रहे है।

यह परिवर्तन ढाँचेगत परिवर्तन का भी उदाहरण है। इसके ही साथ, यह परिवर्तन पारिवारिक सदस्यों की भूमिका में भी परिवर्तन पैदा कर देता है। कैसे भी हो, स्पर्धीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप, भारत में हमें, जाति-व्यवस्था के स्थान पर वर्ग-व्यवस्था का पूर्ण बदलाव वांछित था। पर यह देखा गया है कि वर्ग द्वारा जातिगत व्यवस्था पूरी तरह नहीं बदली जा रही। जातिगत भूमिका में एक सीमा तक ही बदलाव आया है। उदाहरण के लिए हमें ज्ञात होता है कि व्यवसाय जाति मुक्त हो चुका है। कोई भी व्यवसाय चुनने या करने की आजादी है। जातिगत पदसोपानता के आधार पर अब इसका निर्णय नहीं हो रहा है। हमें अनेक जातियों के लोग पूर्व में छोटी जातियों के लिए निर्धारित धंधों में लगे हुए मिलते हैं।

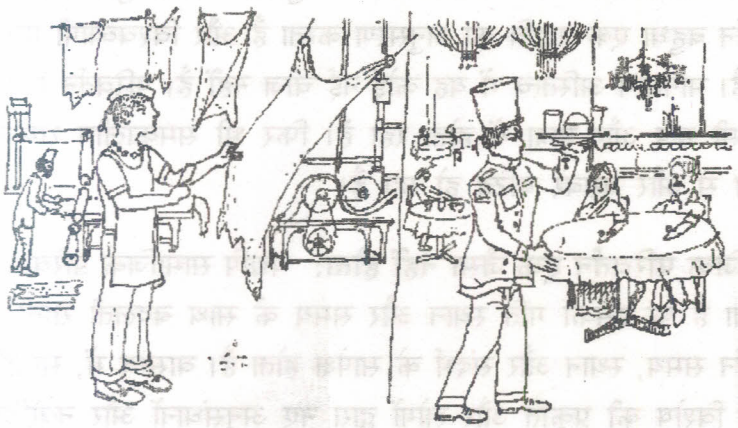

चित्र: *व्यवसाय जाति मुक्त हो चुका है।*

पाठगत प्रश्न 18.1

कोष्ठक में से उपयुक्त शब्द चुनकर खाली स्थान भरिए:

1. जब कोई वस्तु हलचल नहीं करती है तो उसे .....कहते हैं। (चल, अचल, लचीली)
2. सामाजिक परिवर्तन एक ..... परिवर्तन समझा जाता है। (आमूल चूल, तटस्थ वांछित)
3. सामाजिक परिवर्तन का मतलब है सामाजिक ....., सामाजिक क्रमिक विधियों तथा सामाजिक ढाँचे में सुधार अथवा भिन्नता आ जाना होता है। (क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, अन्त:-क्रियाओं)

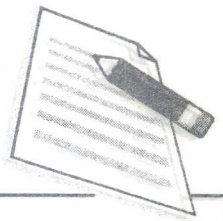

Notes

4. सामाजिक परिवर्तन समाज के संस्थागत और प्रतिमानात्मक ..... में परिवर्तन है। (इतिहास, अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे)

5. समाज, गतिशील प्रभावों के एक ..... में विचरण करता है। (परिवेश, विचारधारा, ब्रह्मांड

18.2 सामाजिक परिवर्तन के अभिलक्षण

सामाजिक परिवर्तन विश्वव्यापी है: प्रत्येक समाज एक या अन्य तरीके से बदलाव का अनुभव करता है। हम जीवन की पद्धतियों, सामाजिक संस्थाओं तथा संस्कृति को आवश्यकताओं और बाह्य स्थितियों के अनुसार बदलते हुए देखते हैं। सामाजिक परिवर्तन बहुधा एक पद्धति का अनुसरण करता है और विश्वव्यापी एवं अवश्यम्भावी होता है। मानवीय अस्तित्व में यह कोई नई चीज नहीं है। परिवर्तन विश्वव्यापी किसी न किसी रूप और मात्रा में होता रहा है। फिर भी समकालीन समाज में परिवर्तन शीघ्रता से और बराबर घटित हो रहा है।

सामाजिक परिवर्तन एक जैसा नहीं होता: यद्यपि सामाजिक परिवर्तन सभी समाजों में होता है पर इसकी गति स्थान और समय के साथ बदलती रहती है। सामाजिक परिवर्तन समय, स्थान और संदर्भ के सापेक्ष होता है। वास्तव में, सामाजिक परिवर्तन समाज विशेष की प्रकृति और लोगों द्वारा नए अनुसंधानों और नवोदित समाजिक संस्थाओं तथा ढाँचे को अपनाने की तत्परता पर निर्भर करता है।

समाजिक परिवर्तन सुविचारित (सोचा-समझा) होता है: सामाजिक परिवर्तन के अनेक आयामों को सोच-विचार पूर्वक प्रोत्साहित किया जाता है। आदिमकाल में लोग एक फलचुन कर खाते थे धीरे-धीरे उन्होंने झूम खेती की ओर कदम बढ़ाया और अंत में एक सिंचित तथा बहुफसली कृषि के क्षेत्र में योग्यता हासिल की। जैसाकि औद्योगिक समाजों के विकास के मामलों में देखा गया है कि वहाँ वैज्ञानिकों ने लगातार अधिक प्रभावी प्रकारों की ऊर्जा तथा चिकित्सा-प्रौद्योगिकी में रहते हैं। उन्होंने बायो गैस भोजन बनाने के लिए ही नहीं, अपितु गाँवों में प्रकाश की व्यवस्था आदि हेतु भी इस्तेमाल की है। चिकित्सा-वैज्ञानिक अब सफलता पूर्वक, प्राय: सभी अवयवों के आपरेशन सफलतापूर्वक कर रहे हैं। नई प्रोद्योगिकी ने मानव की चंद्रमा पर उतरने जैसी उपलब्धियों की सीमा संभावनाओं को बढ़ा दिया। यह भी देखा जा रहा है कि नागरी परिवेश में सहशिक्षा के द्वारा अनेक अन्तर्जातीय विवाह भी प्रोत्साहित हो रहे हैं। किंतु ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे जोड़ों को बहिष्कृत कर दिया जाता है और कभी-कभी दंडित भी किया जाता है।

परिवर्तन की अवधि भिन्न-भिन्न होती है: इसका अर्थ यह है कि परिवर्तन तीव्र या धीरे-धीरे, सतत या आकस्मिक, लंबा (बड़ा) या छोटा हो सकता है। इस प्रकार, परिभाषा यह कहती है कि परिवर्तन में कुछ समय तो लगता ही है। कुछ परिवर्तन थोड़े समय में ही घटित हो जाते हैं जबकि कुछ अन्य सदियों बाद होते हुए दिखाई देते हैं। हरित क्रांति ने एक दशक में ही बहु-फसलीय और ऊँची पैदावार वाले बीजों की किस्मों की उपज में प्रसिद्धि प्राप्त की। जबकि महिला शिक्षा के प्रसार और सूचना प्रौद्योगिकी में परिवर्तन ने तीव्र परिवर्तनों को जन्म दिया है।

सामाजिक परिवर्तन मूल्य-तटस्थ होता है: सामाजिक परिवर्तन एक जीवन-मूल्य-तटस्थ प्रक्रम है, क्योंकि, यह अच्छे या बुरे, वांछित और अवांछित के स्वरूपों में नहीं समझा या विचारा जाता। अच्छा और बुरा-दोनों विषयगत विचार धाराएँ हैं और वे विभिन्न व्यक्तियों, समुदायों और समाजों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न कसौटियों पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय समाज में आजादी के बाद कुछ सुधार हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि औद्योगिक विकास के कारण उनकी जीवन-शैली सुधरी है, जबकि अन्य लोग कहते हैं कि यह मानव समुदाय के लिए एक दुर्भाग्य का विषय है कि हमने अपनी रोजी-रोटी ही नहीं खोई अपितु इससे प्रदूषण भी बढ़ा है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन जीवन-मूल्य-तटस्थ समझा जाता है। अत: ऐसी विभिन्न लोगों की विषयगत या व्यक्तिगत पसंदों को सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन में महत्व नहीं दिया जाता।

पाठगत प्रश्न 18.2

'सही' या 'गलत' के ऊपर सही (✓) का चिन्ह लगाइये:

1. सभी समाजों के लिए सामाजिक परिवर्तन की दर एक समान है। (सही/गलत)
2. सामाजिक परिवर्तन एक विश्वव्यापी क्रमिक प्रक्रिया है। (सही/गलत)
3. सामाजिक परिवर्तन एक लघु अवधि में भी घटित हो सकता है और सदियों में भी दिखाई दे सकता है। (सही/ गलत)
4. सामाजिक परिवर्तन अच्छा या बुरा, वांछित अथवा 'अवांछित' हो सकता है। (सही/गलत) 18.3 सामाजिक परिवर्तन से संब) कुछ परिभाषिक शब्द

18.3 सामाजिक परिवर्तन से संबद्ध कुछ परिभाषिक शब्द

जब हम परिवर्तन की चर्चा करते हैं तो अनेक पारिभाषिक शब्द और वस्तुएँ इससे जुड़ी हुई होती हैं। सामाजिक परिवर्तन से संबद्ध जो पारिभाषिक शब्द हैं वे हैं क्रमिक विकास और ''प्रगति''। इस पाठ में हम इन शब्दों पर विचार करेंगे और कुछ अन्य संबधित पारिभाषिक शब्दों जैसे ''क्रांति'' और ''विकास'' पर प्रकाश डालेंगे।

18.3.1 क्रमिक विकास

पारिभाषिक शब्द 'क्रमिक विकास' (इवोल्युशन) का आशय 'वृद्धि' से कुछ ज्यादा है। 'वृद्धि' में निहित वास्तविक अर्थ होता है आकार या गुण में वांछित दिशा में परिवर्तन। 'क्रमिक विकास' में आकार में ही नहीं अपितु ढाँचे में भी अधिक स्वाभाविक परिवर्तन शामिल होता है। यह वृद्धि की प्रक्रिया, समाज की संरचना और कार्यों में जटिलता और विभेदों को बढ़ाती है। यह समाज के विभिन्न अंगों में निहित पारस्परिक निर्भरता से भी संबंधित होता है। इस तरह हमें ज्ञात होता है कि क्रमिक विकास परिवर्तन की एक निश्चित दिशा की ओर संकेत करता हुआ सततता की एक संसूचना है। यह एकरेखीय अप्रत्यक्ष दशा है, जैसे साधारण से जटिल ढाँचा और छोटे से बड़ा जबकि परिवर्तन की अनेक दिशाएँ या दशाएँ हो सकती है जैसा कि जैव शरीर-रचना के मामले में देखा जाता है, जैविक क्रमिक विकास परिवर्तन को साधारण से एक जटिल स्तरीय संरचना के रूप में व्यक्त करता है। अनेक समाजशास्त्रियों ने, इसी भांति, सामाजिक क्रमिक विकास की व्याख्या करते हुए समाज की तुलना एक जैविक शरीर-रचना से की है। इसे बढ़ती हुई क्षमताओं और परिवेश के अनुकूलन के साथ प्रगतिशील भिन्नताओं की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। लोगों द्वारा अपने आश्रय (मकान) बनाने के तरीके की ओर ध्यान देने से इसे और स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

> इस प्रकार हम कह सकते हैं कि क्रमिक विकास एक उल्टी न जा सकते वाली प्रक्रिया है। जटिल स्थिति से साधारण की ओर इसकी गतिशील दिशा नहीं लौटाई जा सकती।

पहले लोग अपने सगे पारिवारिक सदस्यों की मदद से स्वयं अपने मकान बनाते थे। समाज के लिए वे अपने आस-पड़ोस पर निर्भर होते थे। बाद में उन्होंने अपने कार्य को सुधारा। धीरे-धीरे तकनीक की प्रगति के साथ उन्होंने बढ़िया औजारों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया और उन्हें कुशल कारीगर जैसे राजमिस्त्री, बढ़ई, प्लम्बर, इलैक्ट्रीशियन और अन्य की आवश्यकता पड़ी। इस स्थिति में उन्होंने जलवायु, वर्षा, और भूमि को ध्यान में रखकर कुछ अन्य पदार्थों का प्रयोग करना भी आरंभ कर
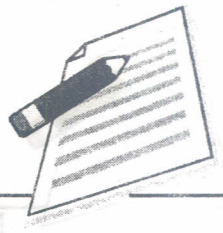
दिया। इसे मानव समाज के आदिम काल से क्रमिक विकास के रूप में भी परिभाषित करके देखा जा सकता है। प्रारंभ में मानव भोजन बटोरते थे जो धीरे-धीरे घुमक्कड़ और शिकारी समूहों में बदल गए। पौधों और पशुओं का पालन करने से वे कृषि कार्य की स्थिति में आ पाए। इसके अनंतर व्यवस्थित कृषि और बागवानी की व्यवस्था बनी। तदनंतर मानव ने औद्योगिक अवस्था में प्रवेश किया। सामाजिक संस्थाओं, कानूनों, आदर्शों, नैतिक मूल्यों और समाजिक ढाँचे के क्रमिक विकास में भी इसी के समान प्रवृत्ति देखी जा सकती है। किसी भी तरह की एक पद्धति में संबंधित परिवर्तनों की एक श्रृंखला 'क्रमिक विकास' कहलाती है। जो भी हो, यह देखा गया है कि मानवीय ज्ञान में वृद्धि दर्शाते हुए सामाजिक क्रमिक विकास बहुरेखीय हो सकता है।

18.3.2 राज्यक्रांति

मौजूदा सामाजिक व्यवस्था और पद्धति को अचानक और आकस्मिक उखाड़ फेंके जाने की स्थिति क्रांति होती है। यह एक उस परिवर्तन के रूप में भी जानी-पहचानी जाती है जो अत्यंत छोटी अवधि में घटित होता है। चलती हुई प्रणाली को बदलने वाली नई प्रणाली पूर्णत: भिन्न और नवीन होती है। यह फ्रांस की राज्यक्रांति के समान होती है जिसके फलस्वरूप सम्राट की सत्ता एकदम समाप्त हो गई थी। भूखी और गरीब जनता ने सत्तासीन लोगों पर हमला करके उन्हें पूर्णत: निरस्त कर दिया था। यह सत्ता सामान्य लोगों के शासन द्वारा बदल दी गई थी।

> विगत दशकों में महात्मा गांधी एक सच्चे क्रांतिकारी हुए हैं। वे शोषण के विरूद्ध सफलता पूर्वक लड़े और ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंका।

क्रांति का लक्ष्य मूलत: एक उत्पीड़क प्रणाली से जनता को मुक्ति दिलाना होता है। यह असंतोष के प्रमुख कारण को हटा देती है और इस प्रकार उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक वेदनाओं का अंत हो जाता है। जो भी हो, वे अभियान जो पुरानी, परंपरागत पद्धतियों की बहाली अथवा पुनरस्थापना के उद्देश्य से चलाये जाते हैं वे 'प्रति-क्रांति' कहलाते हैं। उदाहरणत: परंपरागत जीवन मूल्यों की बहाली के लिए वेदों के अध्ययन पर बल देना। यह सामाजिक उत्तरदायित्वों और लैंगिक समानता के प्रति एक सकारात्मक भावना पैदा करने के लिए था।

18.3.3 प्रगति

यह एक ऐसा परिभाषिक शब्द है जो वर्तमान को प्राचीन से तुलना करके देखता या मापता है। प्रगति सामाजिक परिवर्तन से उतनी संबंधित नहीं होती जितनी कि उस दिशा से होती है जिसे लोग समझ-बूझ कर उस परिवर्तन को देते हैं। इससे किसी पूर्व

निर्धारित, आदर्श, लक्ष्य अथवा सुनिश्चित मुकाम के अस्तित्व का आभास होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक अंतिम पड़ाव या मुकाम पर पहुँचना है। इसलिए वांछित दिशा में एक अभियान पर चल पड़ना है। यह आंदोलन इसलिए होता है कि अंतिम लक्ष्य या मुकाम पर पहुँच सकें और इसे ही ''प्रगति'' के रूप में परिभाषित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह सदा किसी वांछित मुकामों की ओर, एक सुनिश्चित दिशा में घटित परिवर्तन है। इसे पोषित जीवन मूल्यों की वसूली, जो कि वांछनीय है, कहा जा सकता है। यह देखा जाता है कि केवल समुचित रीति से तुलना करके ही प्रगति का समुचित अनुभव किया जा सकता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि यदि सामाजिक परिवर्तन वांछित दिशा में होता है तो उसे 'प्रगति' कहते हैं। इस शब्द में एक 'न्याय' परक मूल्य निहित होता है।

प्रगति के निर्धारण के लिए पुराने मानदंड प्रौद्योगिक उन्नति, जैसे अर्थ व्यवस्था तथा संचार प्रणाली से संबंधित होते थे। परंतु यह पाया गया है कि प्रगति के मूल्यांकन का यही अकेला आधार नहीं हो सकता। एक क्षेत्र में हुई प्रगति, वास्तव में दूसरे क्षेत्र से संबंधित और उसके ऊपर आश्रित होती है। इससे हमें परिवर्तन को एक जटिल घटक के रूप में पहचानने की दिशा मिलती है। और फिर मानव-विकास की प्रत्येक उत्तरवर्ती अवस्था प्रगति होगी। इसी भांति, किसी संगठन की बढ़ती हुई जटिलता अथवा श्रम के सुव्यवस्थित विभाजन से प्रगति दिखाई देगी। अत: प्रगति केवल सरल से जटिल की ओर साधारणत: एक अभियान के रूप में ही नहीं ठहराया जा सकती अपितु यह वह है जिसमें अनेक आयाम भी निहित हैं अर्थात यह बहुआयामी है।

इसे साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि प्रगति दो कारकों पर आधारित होती है, एक लक्ष्य का स्वरूप और दूसरा दूरी जो हमारे और इसके बीच में है। प्रगति, प्राय: सामाजिक स्वरूप पर भौतिक उन्नति, व्यक्तिगत तरक्की, जीवन की मानवीय अवस्थाओं पर और अधिक नियंत्रण, क्रम रूपता और समन्वय के स्वरूपों से निर्धारित होती है। अतएव, जब हम कहते हैं कि हम प्रगति कर रहे हैं तो हम समझते हैं कि समाज भौतिक और नैतिक-दोनों क्षेत्रों में उन्नति कर रहा है। बिना स्तर के संदर्भ के प्रगति की बात करना संभव नहीं है। हमें मालूम है कि स्तर अनिवार्य रूप से, वैयक्तिक होते हैं। यह इसलिए होता है कि एक जैसे सामाजिक परिवर्तनों पर भिन्न-भिन्न लोग अलग-अलग तरह से देख या अनुभव कर सकते हैं। कुछ को वह प्रगति दिखाई देगी तो कुछ को पतन। लड़के-लड़कियों के मुक्त विचरण के मामले में कुछ लोग इसे 'प्रगतिशीलता समझ सकते हैं तो दूसरे लोगों को यह नैतिक पतन जैसा लगता है। दूसरे शब्दों में, एक स्पष्ट और सुनिश्चित स्तर जो सभी को स्वीकार्य हो, का मिलना कठिन है। इसके विपरीत हम ऐसी प्रगति के प्रति सुनिश्चित विचारों के निर्धारण में एक

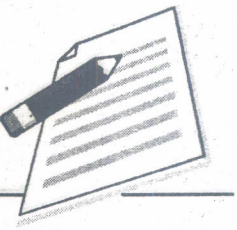

कठिनाई में फँस जाते हैं जो सभी कालों और सभी संस्कृतियों पर लागू होती है। जैसे मनुष्य के पास उसकी आवश्यकता के सभी भौतिक पदार्थ मौजूद हैं तो सारे आविष्कार बंद कर दिए जाएँ, ऐसा संभव ही नहीं है क्योंकि आदमी की आवश्यकताएँ (इच्छाएँ) अनंत हैं, परिवर्तन तो भविष्य में भी निरंतर होते रहेंगे।

18.3.4 विकास

विकास की अवधारणा हाल ही के वर्षों में विकसित हुई है। इसका लक्ष्य वांछित दिशा में परिवर्तन होता है। यह समाज के सदस्यों द्वारा वांछनीय समझे जाने वाली एक दिशा में सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन की रणनीति होती है। यह संदर्भपरक और प्रकृति सापेक्ष्य होती है। अत: विकास का विचार एक समाज से दूसरे समाज में अलग-अलग हो सकता है। यह समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक और राजनैतिक स्थितियों पर आधारित होता है। यह एक मिला-जुला विचार है। इसमें अन्य विभिन्न क्षेत्रों जैसे-व्यापार, कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादी, की प्रगति सम्मिलित होती है। इसी के साथ, कमजोर वर्गों, महिलाओं, बीमारों बुजुर्गों, बच्चों, बेरोजगारों तथा अल्पसंख्यकों के कल्याण-कार्यक्रम भी विचारणीय बिन्दुओं में से कुछ हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विकास एक मूल्य परिपूरित विचार है जिसमें निश्चित समाज, क्षेत्र तथा जन-समुदाय की सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। अनेक नीतियाँ और प्रोग्राम ग्रामीण लोगों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं, नगरवासियों, कृषि मजदूरों तथा औद्योगिक श्रमिकों आदि के विकास के लक्ष्य से प्रारंभ किए जाते हैं।

हम क्यों कहते हैं कि "परिवहन और संचार-माध्यमों के द्वारा विकास हुआ है?" इसकी विवेचना-साइकिल से मोटर साइकिल, रेलवेस्टेशन से आटोमोबाइल की उन्नति की ओर झांक लेने से की जा सकती है। यह अपेक्षाकृत कमतर से अधिकतर उन्नतिशील अवस्था की ओर गतिशीलता को ही नहीं दर्शता। इससे हमें समाजिक और आर्थिक निहितार्थों पर भी विचार करने की आवश्यकता है। यह देखा गया है कि रेलवे के मामले में बहुत से क्षेत्रों को व्यापारिक कारणों से परस्पर जोड़ा गया है। इससे दूरियाँ ही नहीं पटीं अपितु लोग भी परस्पर नजदीक आये हैं। दूसरे शब्दों में, विभिन्न संस्कृतियों एवं वर्गों के लोगों ने परस्पर मेल मिलाप प्रारंभ कर दिया है। इससे संस्कृतियों का विनिमय, बाधाओं का उन्मूलन तथा बेहतर समझदारी को प्रोत्साहन मिला है। इसी के साथ-साथ इससे अकुशल से उच्चस्तरीय कुशल लोगों के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन हुआ है। यह इस बात का प्रमाण है कि रेल को विकास के एक वाहन के रूप में देखा और पहचाना जाना चाहिए न कि केवल परिवहन का एक साधन मात्र।

पाठगत प्रश्न 18.3

एक वाक्य में उत्तर दीजिए

1. सामाजिक परिवर्तन क्या होता है?

.....

2. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं लिखिए।

.....

3. क्रमिक विकास से आप क्या समझते हैं?

.....

4. 'क्रांति' और 'प्रति-क्रांति' परस्पर किस तरह अलग-अलग हैं?

.....

5. 'प्रगति' और 'विकास' पारिभाषिक शब्दों के बीच भेद के दो बिन्दु लिखिए।

.....

18.4 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त

सामाजिक परिवर्तन की विवेचना करने के लिए हमें समाज विज्ञानियों द्वारा सुझाए गए सामान्य सिद्धान्तों को समझ लेना आवश्यक है।

1. क्रमिक विकास का सिद्धान्त 2. चक्रीय सिद्धान्त

3. कार्यात्मकता का सिद्धान्त; 4. संघर्ष का सिद्धान्त।

1. **क्रमिक विकास का सिद्धान्त:** यह विश्वास किया जाता हे कि समाज एक शरीर-रचना के समान हैं जो डारविन के जैवीय क्रमिक विकास ''योग्यतम की उत्तरजीविता'', के सिद्धान्त की रीति से विकसित होता है। दूसरे शब्दों में, समाजों को अस्तित्व की उच्चतर और अधिक प्रगतिशील तथा विकसित अवस्था की ओर बढ़ती हुई जटिलता पर आधारित स्तरों की श्रृंखलाओं से गुजना पड़ता है। यह सिद्धान्त उस विचार का पक्षधर है जिसके अनुसार विकास की प्रत्येक नई अवस्था अपनी पिछली अवस्था से अधिक प्रगतिशील होती है। किसी तंत्र में संबद्ध परिवर्तनों की श्रंखला क्रमिक विकास है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें छिपे हुए गुण अपने आप व्यक्त होते हैं। परिवर्तन बदलती हुई इकाई में,

उसे संचालित करने वाली शक्तियों के प्रकाशन के रूप में, अपने आप घटित होना चाहिए।

2. **चक्रीय सिद्धान्त:** यह सिद्धान्त इस विश्वास पर स्थापित हुआ है कि समाजों का पूर्वनिर्धारित जीवन चक्र, जन्म, वृद्धि, परिपक्वता तथा पतन होता है। सागर की लहरों की भांति महान संस्कृति उदित होती है, ऊँचाई पर पहुँचती है, पर केवल गायब होने के लिए ताकि अपने क्रम में अन्य लहरें उठें और जाग्रत हों। इसमें क्रियाओं के समूह दोहराए जाते हैं वैसे ही जैसे प्रकृति जैसे रात दिन तथा मौसमों आदि के चक्र होते हैं।

	शीतकाल		जन्म	
पतझड़		बसंत	पतन	वृद्धि
	ग्रीष्म		परिपक्वता	
	मौसम		*समाज की वृद्धि*	

हिन्दू पुराण शास्त्रों के अनुसार, वर्तमान समाज अंतिम युग में है जिसके बाद 'सतयुग' आएगा जो कलियुग की समाप्ति के बाद पुन: प्रारंभ होगा। विभिन्न सभ्यताओं जिनमें मिस्त्र, यूनान तथा रोम की सभ्यताएँ भी शामिल हैं, की उत्पत्ति से यह प्रमाणित भी होता है कि वे जन्म, परिपक्वता और मृत्यु के चक्रों से गुजरीं। यह देखा गया है कि समाज राजनैतिक उत्कर्ष और अपकर्ष की अवधियों से गुजरते हैं, जिनकी चक्रीय पद्धति से पुनरावृत्ति होती रहती है।

3. **कार्यात्मकता का सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार, समाज बदलते हैं किंतु संतुलन की ओर गतिशील होने का प्रयास करते हैं। किसी प्रणाली में विरोध को मौजूदा ढाँचे में आसानी से मिला लिया जाता है। परिवर्तन के भीतरी और बाहरी स्रोत तंत्र को संतुलन की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक ले जाते हैं। ढाँचागत विभिन्नता तथा सह-संकल्पित पद्धतियों का विकास और तंत्र अलग हुए अंगों को एकजुट करते हैं, नई ढाँचागत इकाइयाँ और नई संस्थाएँ उन कार्यों को पूरा करती हैं जो पुरानी इकाइयों द्वारा किये गए थे। उदाहरणत: शिक्षा कार्य जो पहले परिवार के लोगों द्वारा आसानी से किया जाता था, अब शैक्षिक संस्थाओं-स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों द्वारा किया जाता है।

4. **संघर्ष का सिद्धान्त:** इस सिद्धान्त के अनुसार क्रिया, विश्वास और अन्तर्क्रिया एक विपरीत प्रतिक्रिया को जन्म देने का प्रयत्न करती हैं। इस तरह यह सिद्धान्त सामाजिक असंगठन का उपयोग करते हुए अस्थिरता पैदा करने वाली शक्तियों को उजागर करता है। इसके अनुसार संघर्ष का प्रमुख मूल कारण शक्ति और सत्ता का असमान विभाजन है। सत्तासीन समूह यथावत स्थिति बनाए रखना चाहते हैं जबकि दूसरे समूह उसे बदलना चाहते हैं। इन समूहों के बीच में उदित

संघर्ष समाज के ढाँचे में विभिन्न परिवर्तनों को जन्म देता है हालांकि संघर्ष की प्रकृति और गहराई तथा परिणामगत परिवर्तन अनेक कारकों पर आधारित होते हैं। प्रत्येक सामाजिक ढाँचा (संरचना) अपने अस्तित्व की मौजूदा अवस्था की ''थीसिस'' वाद के रूप में प्रारंभ होता है किंतु इसके अपने आंतरिक अन्तर्विरोध अथवा विपरीत अवस्थाएँ उसकी संरचना के लिए चुनौती बन जाती हैं। यह चुनौती ''एँटीथीसिस'' (प्रतिवाद) कहलाती है। यह संघर्ष एक ''संवाद'' के द्वारा तय होता है जो पूर्णत: ''थीसिस'' ओर एँटी थीसिस'' दोनों के कुछ तत्वों को मिलाकर पूर्णत: नए सामाजिक ढाँचे के रूप में प्रगट होता है। फिर भी, यह सिद्धान्त समाजों में सामाजिक स्थिरता को स्पष्ट नहीं करता।

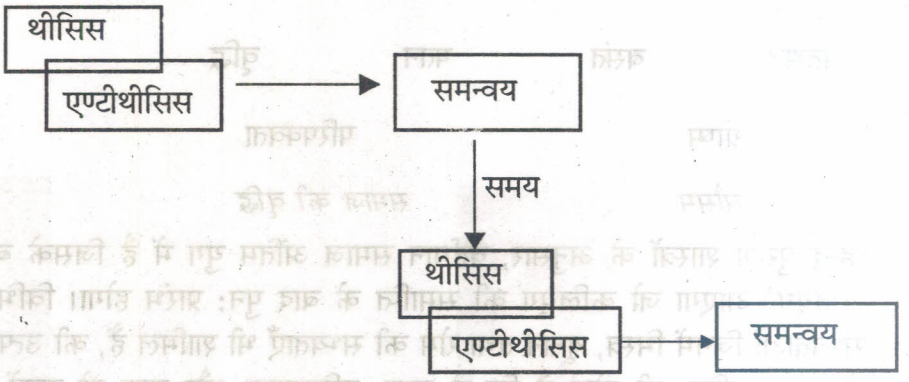

सामाजिक परिवर्तन का द्वंद्वात्मक सिद्धांत

18.5 समाजिक परिवर्तन की पद्धतियाँ

यह देखा गया है कि सामाजिक परिवर्तन निश्चित पद्धतियों (नमूनों) का अनुसरण करता है। व्यापक रूप से मान्य पद्धतियाँ निम्नानुसार है;

1. **रेखीय परिवर्तन** इस प्रकार का परिवर्तन एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक एक सरल रेखीय तरीके से प्रगति क्रम दर्शाता है।

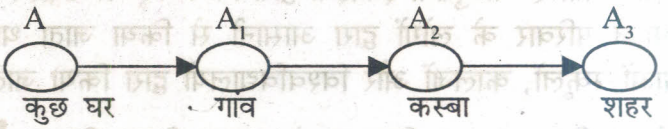

चित्र: कुछ घरों से शहर तक सतत वृद्धि क्रम (संख्या के आधार पर)

धीरे धीरे सुधार कर समाज एक उच्चतर सभ्य समाज बनने की दिशा में आगे बढ़ता है। अत: इसकी प्रगति रेखीय क्रम से होती है। कल क्या आविष्कार होगा, यह भी आज जो मौजूद है उस पर ही आधारित नहीं होता है, अपितु, पूर्व आविष्कारों के

उद्गमों पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए संचार के विकास की वृद्धि जैसे टेलीफोन व्यवस्था ने एक रेखीय पद्धति का अनुसरण किया है। यह भूमिगत लाइन (लैंडलाइन) से कॉर्डलैस टेलीफोनों और अब मोबाइल फोन की स्थिति मे पहुँच गया है।

2. **चक्रीय परिवर्तन:** नजदीक से देखने पर क्रियाओं के समूह की पुनरावृत्ति शीघ्र या त्वरित परिवर्तन के रूप में घटित होती दिखाई देती है। जिनसे चक्रीय पद्धति निर्मित होती है, जैसे प्रकृति की लयात्मकता, रात-दिन का चक्र, बोने काटने और फसल उठाने के मौसम आदि। इसी भाँति समाज का भी एक पूर्वनिर्धारित जीवन-चक्र होता है। सभी अवस्थाओं को पार कर यह मूल स्टेज (अवस्था) में लौटता है और फिर नया चक्र प्रारंभ होता है।

3. **दोलायमान परिवर्तन आदि:** जब परिवर्तन का स्वरूप प्रगति की ओर अग्रसर होने के बाद विपरीत दिशा में मुड़ता है तो इसे दोलायमान परिवर्तन कहते हैं। दूसरे शब्दों में इस क्रम में परिवर्तन की प्रवृत्ति स्थिर नहीं होती अपितु, अनुकूल परिस्थिति में उत्थान और प्रतिकूल परिस्थिति में पतन की ओर बढ़ता है। जैसा कि कृषि के क्षेत्र में होता है, अपर्याप्त मानसून के कारण एक फसल में कृषि क्षेत्र में उन्नति शिथिल हो जाती है तो अगली फसल में उपयुक्त मानसून होने पर बढ़ जाती है।

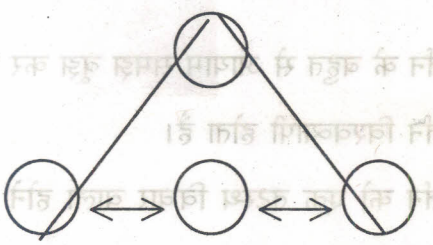

दोलायमान परिवर्तन

पाठगत प्रश्न 18.4

एक वाक्य में उत्तर दीजिए:

1. सामाजिक परिवर्तन की चक्रीय पद्धति का एक उदाहरण दीजिए।
2. दोलायमान या अस्थिर परिवर्तन क्या होता है?
3. सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धांत समझाइये।

4. सामाजिक परिवर्तन का कार्यात्मकता का सिद्धांत समझाइये।
5. समाजिक परिवर्तन को समझाने के लिए समाजविज्ञानियों द्वारा अपनाए गए तीन सिद्धान्तों की सूची बनाइए।

अब तक आपने देखा है कि सामाजिक परिवर्तन विश्वव्यापी है और समय के अनुसार विभिन्न पद्धतियाँ अपनाता है। आपने यह भी पढ़ा है कि समाजशास्त्रियों द्वारा सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति और सीमा को व्यक्त करने के लिए कैसे विभिन्न विचारों और परिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है? परंतु प्रश्न अभी भी शेष रहता है कि समाज में परिवर्तनों के लिए उत्तरदाई प्रमुख कारक कौन हैं? अगले पाठ में समाजिक परिवर्तन के कुछ प्रमुख तत्वों का वर्णन किया गया है।

आपने क्या सीखा

- सामाजिक परिवर्तन केवल ऐसे विकल्पों से संबद्ध है जो समाज और इसकी संस्कृति में घटित होते हैं।
- विभिन्न समुदायों (समाजों) में सामाजिक परिवर्तन की गति (दर) अलग-अलग होती है।
- सामाजिक परिवर्तन के बहुत से आयाम समझ बूझ कर प्रोत्साहित किए जाते हैं।
- सामाजिक परिवर्तन विश्वव्यापी होता है।
- समाजिक परिवर्तन को एक तटस्थ विचार वाला होने के रूप में देखा समझा जाता है
- क्रमिक विकास में, एक गहन आंतर-परिवर्तन होता है जो मूलत: आकार में ही नहीं अपितु ढाँचे में भी शामिल होता है। इस प्रकार क्रमिक विकास, परिवर्तन की निश्चित दिशा को इंगित करते हुए सातत्य की अभिव्यक्ति है।
- क्रांति (राज्य क्रांति) मौजूदा सामाजिक पद्धति और प्रणाली को अचानक और आकस्मिक रूप से उखाड़ फेंकने का एक स्वरूप है। यह ऐसा परिवर्तन है जो अत्यन्त अल्प अवधि में घटित हो जाता है।
- राज्यक्रांति का मूल उद्देश्य एक अत्याचारपूर्ण प्रणाली से लोगों को मुक्ति दिलाना होता है।
- प्रगति सदैव कुछ वांछित लक्ष्यों के लिए निश्चित दिशा में घटित परिवर्तन होती

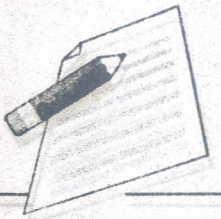

है। इसे पोषित जीवन मूल्यों की भरपाई कहा जा सकता है, जो वांछनीय है।

- प्रगति दो कारकों पर निर्भर करती है: लक्ष्य का स्वरूप और उससे हमारी दूरी।
- एक निश्चित दिशा में नियोजित उस सामाजिक परिवर्तन की रणनीति विकास कहलाती है जो समाज के सदस्यों के द्वारा वांछित समझा जाता है।
- विकास मूल्य परिपूरित विचार होता है जिसमें एक निश्चित समाज, क्षेत्र और जन-समुदाय की सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है।
- सामाजिक परिवर्तनों की निश्चित पद्धतियाँ (पैटर्न) होती हैं।

  1. वे रेखीय परिवर्तन हैं।
  2. चक्रीय परिवर्तन।
  3. दोलायमान (अस्थिर) परिवर्तन।

- सामाजिक परिवर्तन के चार प्रमुख सिद्धान्त हैं:

  1. क्रमिक विकास का सिद्धान्त।
  2. चक्रीय सिद्धान्त।
  3. कार्यात्मकता का सिद्धान्त।
  4. संघर्ष का सिद्धान्त।

पाठांत प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं की सूची बनाइए।
2. 'क्रमिक विकास' और 'क्रांति' (राज्यक्रांति) इन पारिभाषिक शब्दों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. 'प्रगति' और 'विकास' के मध्य अंतर के कम से कम छह विन्दु बताइए।
4. समाज में देखे किसी सामाजिक परिवर्तन में सबसे ज्यादा बारंबार पाये जाने वाली पद्धतियों (पैटर्न) की विवेचना कीजिए।
5. सामाजिक परिवर्तन के संघर्ष के सिद्धान्त का वर्णन लगभग 125 शब्दों में कीजिए।

शब्द–कोष'

1. भिन्नता- पृथक रूपों में पाया जाना, परिवर्तित होते रहना
2. तटस्थ- निष्पक्ष, जो न सकारात्मक हो न नकारात्मक (जो किसी में भागीदार न हो)
3. संक्रमण- एक स्थिति दशा या स्थान को बदलकर दूसरे में पहुँचना।
4. रूढिमुक्त - सामाजिक परंपराओं से कम जुड़ना।
5. नैसर्गिक- किसी अनिवार्य वस्तु से प्राकृतिक रूप से संबद्ध।
6. अपरिवर्तनीय- जो अपनी पूर्वावस्था में न जा सके।
7. अत्याचारपूर्ण- निर्दय, कठोर तथा नियंत्रक।
8. बहाली - फिर से मूल-स्थिति में चला जाना।
9. प्रबलन- मजबूत बनाना, मदद देना।
10. रणनीति- कार्य-योजना, नीति- नियोजन या प्रबेधन।
11. मूल्य' परिपूरित - अनेकार्थी शब्द, अनिवार्य रूप से अच्छाई और धनात्मक दिशा युक्त
12. कलियुग- काला युग, जहाँ बुराई भलाई पर हावी हो
13. वेद-हिंदुओं के धर्मग्रंथ-संख्या में चार
14. सतुयग- हिंदू पुराण शास्त्र के अनुसार जिस युग में सत्य और भलाई प्रभावी हों।
15. थीसिस- प्रमाणित या प्रमाण किए जाने वाला सिद्धान्त।
16. एंटीथीसिस- दो वस्तुओं में प्रतिवाद या विरोध।
17. सिंथैसिस (संवाद)- सिद्धान्त, या प्रणाली, एक पूर्णत: संबद्ध विचारों की निर्मिति की प्रक्रिया या परिणाम
18. डाइलैक्टिस - सामाजिक शक्तियों के परस्पर विरोधी (विचार संघर्ष) विचारों का संघर्ष।
19. विविधता- प्रकृति में असमानता, विभिन्नता।
20. तर्कसंगत- तर्क पर आधाारित- विचारपूर्ण।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1

1. स्थिर 2. मूल्य-तटस्थ 3. अंत:क्रियाओं
4. ढाँचा (संरचना) 5. (जगत)।

18.2

1. गलत 2. सत्य 3. सही 4. गलत।

18.3

1. सामाजिक परिवर्तन से यह समझा जाता है कि केवल वे बदलाव जो समाज के ढाँचे और कार्यों तथा समाज की संस्कृति में घटित होते हैं।
2. (अ) यह विश्वव्यापी है। (ब) यह एक समान या एक जैसा नहीं है।
   (स) यह अवधि-भिन्न है। (द) यह मूल्य-तटस्थ है।
3. क्रमिक विकास उन पद्धतियों, क्षमताओं, दस्तावेजों, की प्रगतिशील विभिन्नताओं की प्रक्रिया है जो एक निश्चित अविध में साधारण से जटिल होती हुई अपरिवर्तनीय होती है।
4. 'क्रांति' (राज्यक्रांति) एक नई सामाजिक पद्धति के उदभव को दिशा देने वाली सामाजिक प्रणाली के रूप में घटित अचानक आकास्मिक पूर्ण परिवर्तन होती है। जबकि 'प्रति-क्रांति, क्रांति से पहले वाली पुरानी परंपरागत प्रणालियों की बहाली या पुनर्स्थिति होती है।
5. एक 'लक्ष्य' पर पहुँचने के लिए वांछित दिशा में किया गया आंदोलन प्रगति होता है जो सकारात्मक और तर्कपूर्ण विचारों से अभिप्रेरित होता है। विकास एक दिशा में नियोजित सामाजिक परिवर्तन की एक रणनीति है जो एक ही नहीं अपितु सभी संबंधित क्षेत्रों में समाज के सदस्यों द्वारा वांछनीय समझी गयी हो।

18.4

1. व्यापार में तरक्की होती है। उसका पतन होता है, व्यापारिक क्रियाएं उठती व जाग्रत होती हैं, फलती-फूलती हैं, फिर वे नीचे गिरती हैं और तब नए सिरे से प्रारंभ होती हैं।
2. जब परिवर्तन प्रगति की ओर ले जाने के बाद विपरीत दिशा में लौटता है जैसे-यह अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों पर निर्भर करता हुआ ऊपर चढ़ता और नीचे जाता प्रतीत होता है तो यह 'दोलायमान' या अस्थिर परिवर्तन कहलाता है।

3. इसका एक उदाहरण होगा- कृषि जो देशी (आर्गेनिक या कम्पोस्ट) खाद के समय से लेकर (रासायनिक उर्वरकों के समय तक आगे बढ़ी अब पुन: देशी खाद के प्रयोग की ओर वापस आ रही है।

4. सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए समाज विज्ञानियों द्वारा प्रयोग किए गए (प्रयुक्त) प्रमुख तीन सिद्धान्त निम्नानुसार है-

(अ) क्रमिक विकास का सिद्धान्त

(ब) चक्रीय सिद्धान्त।

(स) कार्यात्मकता का सिद्धान्त।

(द) संघर्ष का सिद्धान्त।